INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 5.828 (SJIF 2022)

शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

(Comparative Study of Educational Thoughts of Shankaracharya and Ramanujacharya)

संजय कुमार दूबे
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र)
एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़ (उत्तरप्रदेश, भारत)
सम्बद्ध : प्रो. रा.सि. (रज्जू भय्या) वि.वि., प्रयागराज

डॉ. शैलेश कुमार पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर(बी.एड.)
मुनीश्वर दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश।

DOI No. 03.2021-11278686 **DOI Link ::** https://doi-ds.org/doilink/05.2022-38166117/IRJHIS2205014

सारांशः

भारतीय आस्तिक षड् दर्शनों में वेदान्त दर्शन का स्थान सर्वोपरि है। साधारण अर्थों में वेदान्त से तात्पर्य वेद के अन्त से लगाया जाता है। वेदों के अन्तिम भाग को उपनिषद कहते हैं। वेदों के सार तत्व के रूप में उपनिषदों का ही उल्लेख होता है। इसलिए इन्हें वेदान्त कहा जाता है। वेदों के सार 'तत्व के रूप में' 'प्रस्थान त्रयी' का विशेष महत्व है। प्रस्थान त्रयी में तीन ग्रन्थों का महत्व है। 1. उपनिषद 2. भगवद्गीता तथा बादरायण का ब्रह्मसूत्र। इन्हीं तीन ग्रन्थों से निःसृत मूल तत्व को वेदान्त के नाम से संज्ञापित किया जाता है। 'वेदान्त' के आचार्यों के रूप में चार नाम प्रमुखता से लिये जा सकते हैं। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य तथा माधवाचार्य। शंकराचार्य के वेदान्त को अद्वैत वेदान्त तथा रामानुजाचार्य के वेदान्त को विशिष्टाद्वैत के नाम से अभिभूत किया जाता है। शंकर के समान तेजस्वी दार्शनिक समूचे इतिहास में खोजने से नहीं मिलता। शंकर के समान रामानुज का भी दर्शन मानव सभ्यता की अनमोल धरोहर है।

दोनों दार्शनिकों के लिए 'ब्रह्म' एक महत्वपूर्ण दार्शनिक विषय रहता है क्योंकि दोनों ही वेदों को आधार मानते हैं। शंकर अपने अद्वैतवाद के द्वारा 'ब्रह्म' को एक मानते हैं। रामानुज भी ब्रह्म को एक ही मानते हैं। इस प्रकार वे भी एकवाद के ही समर्थक हैं। किन्तु एक ओर जहाँ शंकर ने सिर्फ ब्रह्म को सत्य माना है और जगत को असत्य, वहीं दूसरी ओर रामानुज 'ब्रह्म' के साथ–साथ जीव व जगत को भी सत्य मानते हैं। इस प्रकार रामानुज के विचारों में विशिष्टता होने के कारण उनके दर्शन को विशिष्टाद्वैत की संज्ञा दी जाती है। प्रस्तुत लेख में शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य के दर्शन के अन्तर्गत उनके द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मिक चिन्तन के साथ–साथ 'शैक्षिक चिन्तन' पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावना :

वैदिक चिन्तन परम्परा के दैदीप्यमान दो नक्षव, शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य के दर्शन मानव सभ्यता की अनमोल धरोहर है। मानवीय ज्ञान को समृद्ध करने में इन प्राचीन भारतीय चिन्तकों का योगदान निश्चित ही अतुलनीय है। यद्यपि समस्त प्राचीन भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय अद्भुत ज्ञान का भण्डार है, तथापि शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य द्वारा प्रस्तुत वेदान्त दर्शन उन सब में शिखा पर विराजमान है। वेदान्त के ज्ञान को अन्य सभी ज्ञानों की पराकाष्ठा माना गया है। इसीलिए वेदान्त दर्शन को 'दर्शन शिरोमणि' की प्रतिष्ठा प्राप्त है। यह हमारे लिए अत्यन्त गौरव की बात है कि जिस समय विश्व के अधिकांश भू–भाग पर अज्ञान का अंधकार व्याप्त था,

उस समय भारत बसुन्धरा पर शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य जैसे अनगिनत दीप जगमगा रहे थे और चतुर्दिक ज्ञान का प्रकाश फैला रहे थे।

वेद विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं। वेद ही समस्त भारतीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता के मूल आधार माने जाते हैं। डॉ0 राधाकृष्णन के शब्दो में–

''वेद मानव मस्तिष्क से प्रादुर्भूत ऐसे नितान्त आदिकालीन प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, जिन्हें हम अपनी निधि समझते हैं।''

(राधाकृष्णनः भारतीय दर्शन भाग–1, पृष्ठ–57)

भारतीय आस्तिक षड्दर्शनों में वेदान्त दर्शन का स्थान सर्वोपरि है। साधारण अर्थों में वेदान्त से तात्पर्य वेद के अन्त से लगाया जाता है। इन्हें वेदों के सार के रूप में परिभाषित किया गया है। वेदों के अन्तिम भाग को उपनिषद भी कहते हैं। इसलिए वेदान्त से तात्पर्य उपनिषद के रूप में भी है। वेदों की संख्या 4 है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। सभी वेदों के तीन–तीन भाग क्रमशः संहिता, ब्रह्मण और आरण्यक या उपनिषद है। उपनिषद वेदों के अन्तिम भाग होने के कारण वेदान्त कहलाते हैं। वेदान्त दर्शन का एक अन्य नाम 'उत्तर मीमांसा' भी है। वास्तव में वेद के सार तत्व के रूप में 'प्रस्थान त्रयी' का विशेष महत्व है। 'प्रस्थान त्रयी' के अन्तर्गत उपनिषद, गीता एवं वादरायण के 'ब्रह्मसूत्र' को स्थान दिया जाता है। इन्हीं तीन ग्रन्थों से निःसृत मूल तत्व को वेदान्त के नाम से संज्ञापित किया जाता है।

आचार्य उदयवीर शास्त्री के शब्दों में–

''वेदान्त पद का तात्पर्य है– वेदादि में विधिपूर्वक अध्ययन, मनन तथा उपासना आदि के अन्त में जो तत्व जाना जाये, उस तत्व का विशेष रूप से यहाँ निरूपण किया गया हो, उस शास्त्र को 'वेदान्त' कहा जाता है।''

'ब्रह्म सूत्र' के प्रणेता वादरायण को वेदान्त दर्शन का पितामह कहा जाता है। इस तरह वादरायण व्यास का 'ब्रह्मसूत्र' वेदान्त दर्शन का प्रथम ग्रन्थ है। वादरायण के परवर्ती आचार्यों ने इस पर टीकायें भी लिखी, जिन्हें भाष्य कहा जाता है। 'ब्रह्मसूत्र' में उपनिषदों के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को साररूप में एकीकृत किया गया है। 'प्रस्थान त्रयी' के मुख्य ग्रन्थों में उपनिषदों को 'श्रुति प्रस्थान' गीता को 'स्मृति प्रस्थान' और ब्रह्मसूत्रों को न्याय प्रस्थान कहा जाता है। वादरायण तथ व्यास को कुछ विचारक एक ही मानते हैं।

उपरोक्त 'प्रस्थान त्रयी' के तीन ग्रन्थों में शंकराचार्य ने जो व्याख्या प्रस्तुत की है वह अद्वैत वेदान्त तथा रामानुजाचार्य ने जो व्याख्या प्रस्तुत की है उसे विशिष्टाद्वैत के नाम से संज्ञापित किया जाता है।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार–

'एक दार्शनिक तथा तार्किक के रूप में सर्वश्रेष्ठ, शान्त निर्णय तक पहुँचाने तथा व्यापक सहिष्णुता में एक मनुष्य के रूप में महान शंकर ने हमें सत्य से प्रेम करने, तर्क का आदर करने तथा जीवन के प्रयोजन को जानने की शिक्षा दी है।''

(डा. राजीव मालवीय : वेदान्त दर्शन और शिक्षा)

शंकराचार्य व रामानुजाचार्य के दर्शन का तुल्नात्मक अध्ययनः–

शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य दोनों ने ही अपने–अपने अनुभव तथा तर्कों के आधार पर ब्रह्म की व्यापकता का निरूपण किया है। ब्रह्म की उपासना का मार्ग प्रसूत किया है। इनके मतों में कुछ विभिन्नतायें भी विद्यमान है, किन्तु मूलरूप से दोनों के विचारों में बहुत अधिकसमानतायें दृष्टिगोचर होती है। 'ब्रह्म' की व्याख्या में दोनों के विचारों में अत्यन्त ही समीपता है। शंकर ज्ञान मार्ग के उपासक माने जाते हैं जबकि रामानुज ज्ञानमार्ग के साथ–साथ भक्तिमार्ग की महत्ता को भी स्वीकार करते हैं। दोनों के अनुसार माया ब्रह्मप्राप्ति के मार्ग में बाधक है। इसलिए माया रूपी अज्ञान का नाश आवश्यक हो जाता है।

शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म ही सत्य है। सम्पूर्ण संसार मिथ्या है। ब्रह्म अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान तथा देश काल से परे सत्ता है। जीव ब्रह्म ही है। अन्य नहीं।

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव न अपरः।।

रामानुजाचार्य जी ने भी ब्रह्म को एक ही माना है, किन्तु ब्रह्म के साथ जीव जगत को भी सत्य माना है। रामानुज के ब्रह्म की विशिष्टता यह है कि वह शंकर के समान ब्रह्म को निर्गुण व निराकार के अतिरिक्त सगुण व साकार भी स्वीकार करते हैं। रामानुज के ब्रह्म में विशिष्टतायें होने के कारण उनके दर्शन को 'विशिष्टाद्वैत' के नाम से अभिभूत किया जाता है। रामानुज के ब्रह्म में दो तत्व हैं। 1. चित तत्व (ब्वदेबपवने), 2. अचित तत्व (न्दबवदेबपवने) ये ही चेतन आत्मा तथा जड़ जगत के रूप में प्रकट होते हैं। अतः ये भी सत्य है। इस प्रकार ब्रह्म के साथ–साथ दोनों तत्व भी सत्य है किन्तु परमतत्व केवल 'ब्रह्म' ही है।

शंकराचार्य के अनुसार सिर्फ दृष्टिभेद के कारण ही ब्रह्म दो रूपों में दिखायी देता है। 1. निर्गुण ब्रह्म 2. सगुण ब्रह्म। शंकर निर्गुण ब्रह्म को 'परमार्थिक सत्य' तथा सगुण ब्रह्म को 'व्यावहारिक सत्य' मानते हैं। वे सगुण ब्रह्म को 'ईश्वर' की उपाधि से अभिभूत करते हैं तथा उसे ही जगत की उत्पत्ति तथा लय का कारण मानते हैं।

रामानुज शंकर के इस विचार को स्वीकार नहीं करते। रामानुज के अनुसार 'ब्रह्म' और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। रामानुज के अनुसार ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न है। ईश्वर सर्वशक्तिमान, अनन्त व नित्य है।

शंकर का 'ब्रह्म' निर्गुण है। उसका न तो कोई आकार है और न तो वह किसी भौतिक पदार्थ से निर्मित। वह केवल एक शुद्ध निराकार अस्तित्व मात्र है। दूसरी ओर रामानुज का 'ब्रह्म' सगुण है। इसलिए रामानुज के ब्रह्म में चेतनता, शुद्धता, दयालुता, दया, आदि गुण भी समाहित हैं।

शंकर का ब्रह्म अवैयक्तिक है। उसमें अस्तित्व है। उसका कोई रूप है ही नहीं। निर्गुण 'ब्रह्म' ही सत्य है। रामानुज के 'ब्रह्म' का स्वरूप वैयक्तिक है। यही स्वरूप ईश्वर है। इसीलिए यह हमेशा व्यक्ति के रूप प्रकट होता है, जिसे अवतार कहते हैं।

शंकर का ब्रह्म स्वयं ही 'ज्ञानस्वरूप' है। शंकर 'ब्रह्म' को ही ज्ञान मानते हैं। इसलिए सत्य ज्ञान को प्राप्त करना ही ब्रह्म ज्ञान है। 'ब्रह्म' को प्राप्त करने के लिए ज्ञानमार्ग ही श्रेष्ठ है। रामानुज का 'ब्रह्म' शुद्ध ज्ञान का स्वरूप नहीं होकर एक वैयक्तिक रूप में अपने को प्रकट करता है, जिसे ईश्वर कहते हैं। रामानुज के ईश्वर को प्राप्त करने के लिए 'भक्ति मार्ग' ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

शंकर के अनुसार 'मोक्ष प्राप्त आत्मायें'। 'ब्रह्म' के साथ साक्षात्कार होने पर उसी प्रकार अपने अस्तित्व को खो देती है जैसे समुद्र में जाकर सभी नदियां अपना अस्तित्व विलीन कर देती हैं तथा सागर के गुणों को ग्रहण कर लेती है। अर्थात् 'ब्रह्म' में ही विलय हो जाती है। रामानुज के अनुसार 'मोक्ष प्राप्त आत्मायें' 'ब्रह्म' तक पहुँचकर भी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाये रखती हैं।

शंकराचार्य व रामानुजाचार्य के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययनः–

अब हम शंकराचार्य व रामानुजाचार्य के विचारों के आलोक में उनके द्वारा प्रसूत शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण के उद्देश्यों, शिक्षा के पाठ्यक्रमों, शिक्षण विधियों, शिक्षक एवं छात्र संकल्पनाओं, अनुशासन प्रविधियों आदि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

शिक्षा का स्वरूपः–

डॉ. राजीव मालवीय के अनुसार–

''वेदान्त दर्शन में सन्निहित शैक्षिक विचार अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। वेदान्त दर्शन शिक्षा अथवा ज्ञान को मुक्ति का मूलाधार मानता है। जो व्यक्ति वास्तविक शिक्षा एवं ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है, वह अपने आत्म–साक्षात्कार के द्वारा ब्रह्म की अनुभूति भी कर लेता है। परिणामतः व्यक्ति का जीवन परमार्थ केन्द्रित तथा व्यवहार लोक कल्याण से सम्पृक्त हो जाता है। विचारों में शुद्धता और ब्रह्म की एकता का आभास होने से व्यक्ति आनन्दातिरेक से आच्छादित हो जाता है।''

(डा. राजीव मालवीयः वेदान्त दर्शन और शिक्षा, पेज–167)

आचार्यशंकर एवं आचार्य रामानुज की शिक्षा पद्धति अत्यन्त ही विलक्षण है। यद्यपि आचार्य शंकर की शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं हो सका तथापि, उन्होंने वेदान्त दर्शन के ज्ञान को प्रचारित करने हेतु चार धार्मिक मठों की स्थापना की। इन चार धार्मिक मठों में दक्षिण में श्रृंगेरी शंकराचार्य पीठ, पूर्व में ओडिशा जगन्नाथ पुरी में गोवर्धनपीठ, पश्चिम में द्वारका में शारदापीठ तथा उत्तर में बद्रिकाश्रम में ज्योतिर्पीठ प्रमुख हैं। शिक्षा के बारे में शंकर का अभिमत है कि–

''शिक्षा एक मुक्ति पर्यन्त चलने वाली आध्यात्मिक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा मनुष्य में निहित ब्रह्मभाव का जागरण रहता है, उसे अपने यथार्थ स्वरूप का बोध होता है, जीवन जगत के प्रति उसके व्यवहार तथा विचारों में निरन्तर परिवर्तन, परिमार्जन एवं संशोधन होता है और वह ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति के योग्य होकर सर्वत्र सम (ब्रह्म) दर्शन करने में समर्थ होता है।''

आचार्य शंकर के अनुसार शिक्षा व्यक्ति की ज्ञान प्राप्ति का साधन है। शिक्षा द्वारा ही उसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है। वेदान्त का केन्द्र ब्रह्म है। अतः ब्रह्मात्व का अन्वेषण करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। ब्रह्म को ब्रह्म विद्या के द्वारा ही जाना जा सकता है। शंकराचार्य के अनुसार ज्ञान का तात्पर्य केवल भौतिक वस्तुओं का ज्ञान नहीं, बल्कि ब्रह्म अथवा आत्मा का ज्ञान है। ज्ञान से ही अविद्या आदि दोषों का निवारण होता है। अतः व्यक्ति के अज्ञान, शोक, मोह, क्रोध आदि दोषों का निवारण ही शिक्षा है। छात्र को ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध ही शिक्षा है।

रामानुजाचार्य के शिक्षा के स्वरूप में एक क्रमिक व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। रामानुजाचार्य ने भी वैदिक शिक्षा प्रणाली को ही मान्यता प्रदान की है। उन्होंने अपने ज्ञान का प्रसार करने हेतु 108 स्थानों की 'दिग्विजय यात्रा' की। रामानुजाचार्य द्वारा अपने भ्रमण के दौरान छः सन्यस्थ एवं दो गृहस्थ मठों की स्थापना की गयी। रामानुज के अनुसार शिक्षण सत्र का प्रारम्भ श्रावण मास की पूर्णिमा तिथि से होनी चाहिए। कृष्णपक्ष में वेदांग तथा शुक्ल पक्ष में वेदों का अध्ययन कराया जाना चाहिए। शिक्षा की समाप्ति पौष माह में 'उत्सर्जस' समारोह द्वारा की जाती है। शिक्षा की सामान्य अवधि के विषय में रामानुज का मत है कि यह न्यूनतम 12 वर्ष तथा अधिकतम 48 वर्ष होनी चाहिए। रामानुज के अनुसार ''मठों में प्रवेश के समय' 'उपनयन संस्कार' किया जाना चाहिए। शिक्षा प्राप्ति के लिए मुख्य अधिकारी ब्राहमण, क्षत्रिय एवं वैश्य को माना गया है। स्त्रियां एवं शूद्रों के लिए शिक्षा प्राप्त करने के मार्ग के रूप में 'शरणागति मार्ग' का उल्लेख है। उपनयन संस्कार के लिए ब्रह्मणों के लिए 08 वर्ष, क्षत्रियों के लिए 11 वर्ष तथा वैश्यों के लिए 12 वर्ष की आयु निर्धारित की गयी थी। स्नातकों की तीन श्रेणियाँ निर्धारित की गयी थी। 1. व्रत स्नातक, 2. विद्या स्नातक, 3. उभय स्नातक। शिक्षा की समाप्ति 'समावर्तन संस्कार' द्वारा की जाती है।

इस प्रकार रामानुजाचार्य की शिक्षा का व्यवस्थित रूप सामने आता है। शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य दोनों ने ही शिक्षा की गुरूकुल प्रणाली को ही मान्यता प्रदान की है। उपनयन संस्कार द्वारा शिक्षा का प्रारम्भ एवं समावर्तन संस्कार द्वारा शिक्षा का समापन दोनों ही विद्वानों द्वारा संस्तुत है। गुरूकुल परम्परा में छात्र अपने गुरू के सानिध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। इस प्रकार शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य दोनों की शिक्षा में कतिपय असमानता को छोड़कर सर्वत्र समानता ही दृष्टिगोचर होती है।

शिक्षा के उद्देश्यः–

शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य दोनों ही वेदान्त को मानते थे। इसीलिए उनके शिक्षा के उद्देश्यों में बहुत अन्तर नहीं है। शंकराचार्य श्रेष्ठ व्यक्ति का निर्माण करना शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मानते हैं। आचार्य शंकर ने शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में वर्गीकृत किया है–

1. शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य–
2. शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य–

शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्यों के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व का समुचित विकास करना ही शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है। व्यक्तित्व विकास के अन्तर्गत शारीरिक विकास, मानसिक और बौद्धिक विकास, नैतिक एवं चारित्रिक विकास, आध्यात्मिक विकास, ज्ञानेन्द्रिय विकास, धार्मिक भावनाओं का विकास तथा जीविकोपार्जन की क्षमताओं का विकास समाहित है।

शिक्षा के सर्वोच्च उद्देश्य के अन्तर्गत 'ब्रह्म ज्ञान' आता है। शंकराचार्य के अनुसार समस्त शिक्षा का सार 'ब्रह्म ज्ञान' में ही निहित है। ब्रह्म ज्ञान के अनुसार ब्रह्म और आत्मा का एकाकार ही शिक्षा है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही शिक्षा का लक्ष्य है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की अविद्या का नाश तथा विद्या की पराकाष्ठा हो जाती है तो उसे सर्वात्मभाव की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार शिक्षा के सर्वोच्च उद्देश्य के अन्तर्गत ब्रह्म की प्राप्ति, माया से मुक्ति, पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति, ब्रह्म विद्या का ज्ञान, अविद्या जनित शोक, मोह, भ्रम आदि दोषों का निवारण, ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान समाहित है।

रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म निर्गुण व निर्विकार नहीं है बल्कि यह सगुण और साकार भी है। ब्रह्म में चित् (जीव), अचित (जड़ प्रकृति) भी अवस्थित है। रामानुज ने उसे ईश्वर की संज्ञा प्रदान की है। ईश्वर में आनन्द व्याप्त है क्योंकि वह दया, करूणा जैसे गुणों से परिपूर्ण है। अतः रामानुजाचार्य के अनुसार सत् चित व आनन्द की प्राप्ति कराना ही शिक्षा का उद्देश्य है। जीव तो ब्रह्म का अंश है। यद्यपि ब्रह्म अखण्ड है फिर भी जीव ब्रह्म में समाहित रहता है। सन्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने भी मानस में रामानुजाचार्य के इसी मत का समर्थन किया ह–

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी।।
जद्यपि 'ब्रह्म' अखण्ड अनन्ता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि सन्ता।।

(रामचरित मानस)

रामानुजाचार्य के शिक्षा के उद्देश्य मूलतः शंकराचार्य के शिक्षा के उद्देश्यों के समीपवर्ती प्रतीत होते हैं। रामानुजाचार्य के द्वारा प्रसूत शिक्षा के उद्देश्यों के अन्तर्गत पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति, ज्ञान विज्ञान का आत्मीकरण, चित्तवृत्ति निरोध, सामाजिक कर्तव्य पालन की भावना का विकास, बालक का धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास तथा निः श्रेयस की प्राप्ति समाहित हैं। परमार्थिक या पराविद्याा को निःश्रेयस कहा जाता है। दोनों चिन्तकों द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों में सर्वप्रमुख लक्ष्य ब्रह्म की प्राप्ति ही है। मानवीय गरिमा के साथ–साथ उसका मानसिक व बौद्धिक विकास, नैतिक व चारित्रिक विकास तथा धार्मिक भावनाओं का विकास शामिल है।

शिक्षा का पाठ्यक्रमः–

गुरू तथा शिष्य के अतिरिक्त पाठ्यक्रम शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। शंकर के अनुसार पाठ्यक्रम में निम्न विशेषतायें होनी चाहिए–

1. पाठ्यक्रम शाश्वत सत्य का उद्घाटक होने के कारण स्थिर व अपरिवर्तनीय होता है।
2. पाठ्यक्रम प्रति भासिक, व्यावहारिक तथा पारमार्थिक स्तरों पर आधारित व्यापक तथा विविधतापूर्ण होना चाहिए।
3. विभिन्न पाठ्य विषयों के अतिरिक्त पाठ्य सहगामी क्रियाओं का भी आयोजन समाहित होना चाहिए।
4. पाठ्यक्रम में आस्तिक तथा नास्तिक दोनों प्रकार के दर्शन शामिल होने चाहिए। तथापि 'ब्रह्म जिज्ञासा' पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
5. पाठ्यक्रम छात्रों के जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए तथा पाठ्यक्रम निर्धारण में छात्रों की योग्यता का ध्यान रखना चाहिए।

शंकराचार्य ने पाठ्यक्रम के दो पक्ष निर्धारित किये हैं।

1. आध्यात्मिक पक्ष
2. व्यावहारिक पक्ष।

आध्यात्मिक पक्ष के अन्तर्गत परमार्थिक विषय निहित है, जिसमें आत्मा व ब्रह्म का ज्ञान शामिल है। इसके अन्तर्गत साहित्य, धर्म, दर्शन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का समावेश है। व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत पाठ्यक्रम में व्यावहारिक जैसे–भाषा, चिकित्साशास्त्र, गणित आदि विषयों का समावेश होना चाहिए। व्यावहारिक क्रियाओं के अन्तर्गत आसन, व्यायाम, भोजन एवं ब्रह्मचर्य आदि का समावेश होना चाहिए।

रामानुज का पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित माना जा सकता है। पाठ्यक्रम में बाह्यरूचि वाले छात्रों के लिए लौकिक विषय तथा आभ्यन्तर रूचि वाले छात्रों के लिए आध्यात्मिक विषय का आयोजन है। रामानुज के भी पाठ्यक्रम को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। 1. परमार्थिक तथा 2. व्यावहारिक। इन्हें क्रमशः परा एवं अपरा भी कहा जाता है। परा विद्या ही निःश्रेयस कही जाती है। परा विद्या में ब्रह्म एवं उसकी प्राप्ति के साधन समाहित हैं। ईश्वरीय सत्ता से सम्बन्धित होने के कारण इसे निःश्रेयस भी कहा जाता है। रामानुजाचार्य के अनुसार साधन चतुष्टय द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उपनिषदों में परा विद्या को उच्चतर स्थान दिया गया है।

अपरा विद्या लौकिक संसार एवं उसकी विचित्रताओं से सम्बन्धित होती है। चूँकि रामानुज के चिन्तन में चित् (जीव), अचित (जगत) दोनों ही समाहित है। इसलिए अपरा विद्या द्वारा रहस्यपूर्ण जगत को जाना जा

सकता है। इसलिए इसमें भौतिक विषयों के शिक्षण को शामिल किया जाता है। रामानुज की दृष्टि में इन दोनों विद्याओं का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद की दृष्टि में अपरा विद्या निम्न श्रेणी की मानी जाती है।

उपरोक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि शंकर की भाँति रामानुज भी पाठ्यक्रम को दो भागों में विभाजित करके आध्यात्मिक के साथ–साथ लौकिक विषयों को महत्व प्रदान करते हैं। दोनों के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि बालक अध्ययन चाहे जहाँ से प्रारम्भ करें, किन्तु उसकी परिणति 'ब्रह्म ज्ञान' अथवा ब्रह्म प्राप्ति तक पहुँचनी चाहिए।

शिक्षण विधियाँः–

शंकराचार्य शिक्षकों द्वारा शिक्षण हेतु विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों के समर्थक हैं। शिक्षक को उन सभी विधियों का प्रयोग करना चाहिए जो छात्रों को ब्रह्म ज्ञान से सम्बन्धित विषयों और भौतिक व व्यवहारिक ज्ञान से सम्बन्धित विषयों में अन्तर समझा सके। इस प्रकार शंकर ने शिक्षण विधियों के तीन सोपानों का उल्लेख किया है। 1. श्रवण, 2. मनन, 3. निदिध्यासन। ब्रह्म साक्षात्कार में श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन आदि साधनों की उपयोगिता निर्विवाद है। इस सम्बन्ध में वेदान्त सार की विद्वन्मनोरंजनी टीका में प्रमाण है–

श्रोतब्यः श्रुतिवाक्येभ्यो, मन्तब्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः।।

वेदान्त सार (विद्वन्मनोरंजनी) पृष्ठ–83

अर्थात् श्रुतिवाक्यों द्वारा ब्रह्म के विषय में श्रवण करना चाहिए, श्रवण की गयी वस्तु का उपपत्तिपूर्वक मनन करना चाहिए और मनन करने के पश्चात् उस पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। ऐसा करने पर ब्रह्म साक्षात्कार सम्भव है।

शंकराचार्य के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के लिए निम्न शिक्षण विधियों का उपयोग किया जा सकता है। 1. प्रत्यक्ष विधि, 2. अनुमान विधि, 3. अध्यारोप विधि, 4. अपवाद विधि, 5. आगम विधि।

प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थों की एक साक्षात चेतना है। यह चेतना इन्द्रियों की क्रियाओं के अभ्यास द्वारा प्राप्त होती है। इसमें ज्ञाता (प्रत्यक्षकर्ता) और पदार्थ (प्रत्यक्ष विषयक) में एक वास्तविक सम्पर्क होता है। इस विधि के माध्यम से छात्रों को शब्द, प्रत्यय, प्रतीक इत्यादि का निर्माण करना सिखाया जाता है।

अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार अनुमान का आधार एक ऐसा साहचर्य है जिसका प्रकाश एक निश्चयात्मक ज्ञान से होता है। जैसे–जहाँ–जहाँ धुआँ है, वहाँ–वहाँ आग है। इस विधि में किसी लिंग द्वारा अन्य वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है क्योंकि उन दोनों के मध्य व्याप्ति का सम्बन्ध रहता है। इस विधि के तीन पद होते हैं पद, साध्य एवं हेतु। व्याप्ति के अन्तर्गत आगमन व निगमन दोनों विधियाँ निहित रहती हैं। इस विधि से विज्ञान एवं गणित जैसे विषयों का अध्ययन कराया जा सकता है।

अध्यारोप विधि द्वारा यह आभास कराया जाता है कि सम्पूर्ण जगत में ब्रह्म ही व्याप्त है। इससे उसे ब्रह्मतत्व का बोध होता है। उसे यह बताया जाता है कि आत्मा ही शरीर है, आत्मा ही मन है, आत्मा ही बुद्धि है तथा आत्मा ही समस्त पदार्थ है।

अपवाद विधि, अध्यारोप विधि की विपरीतार्थी प्रतीत होती है। इसमें युक्ति अथवा तर्क के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि आत्मा न तो शरीर है, न ही मन और न बुद्धि। आत्मा इन सभी से भिन्न व पृथक है। इसमें अध्यारोपित गुण को धीरे–धीरे समाप्त किया जाता है और अन्त में जो शेष रह जाता है, वही आत्मा का सत्य व सनातन स्वरूप होता है।

आगम वेदमूलक और सम्पूरक है। इनके वक्ता प्रायः भगवान शिव को माना जाता है। उपास्य देवता की भिन्नता के कारण आगम के तीन प्रकार हैं। 1. वैष्णव आगम, 2. शैव आगम, 3. शाक्त आगम। सामान्यतया आगम तन्त्र के लिए प्रयुक्त होता है।

आगतं पंचवक्त्रात्तु, गतम् च गिरिजानने।
मतम् च वासुदेवस्य, तस्मादागममुच्यते।।

(वाचस्पति मिश्र, योग्य भाष्य, तत्व वैशारदी व्याख्या)

अर्थात् भगवान शिव के मुख्य से निकलकर पार्वती के मुख्य में समाहित हुआ। यह स्वयं भगवान विष्णु का मत होने के कारण इसे आगम कहा जाता है।

वस्तुतः जिससे अभ्युदय – लौकिक कल्याण और निःश्रेयस मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं, वह आगम कहलाता है।

''आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति अभ्युदयनिः श्रेयसोपाया यस्मात्, स आगमः।।

(वाचस्पति मिश्र, योग्य भाष्य, तत्व वैशारदी व्याख्या)

इस विधि में शाब्दिक ज्ञान का सत्यापन किया जाता है।

रामानुज के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के तीन तत्व होते हैं। 1. ज्ञाता (प्रमातृ चैतन्य) 2. ज्ञान की प्रक्रिया (प्रमाण–चैतन्य) तथा 3. ज्ञेय पदार्थ (जिसके बारे में ज्ञान प्राप्त करना है) ज्ञान प्राप्ति के मुख्यतः पाँच श्रोत माने गये हैं। 1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. अनुभव, 5. तर्क। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि रामानुज के अनुसार ज्ञान के सिर्फ तीन साधन है– प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द अथवा आप्त बचन। शब्द श्रोत द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीन साधन महत्वपूर्ण है– श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन।

प्रत्यक्ष श्रोत द्वारा बालकों को शब्द, प्रत्यय, प्रतीक आदि का ज्ञान कराया जा सकता है। शब्द श्रोत द्वारा विषयों का स्थायी ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। अनुमान विधि द्वारा दो वस्तुओं में व्याप्ति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अनुभव द्वारा आत्मानुभूति परक ज्ञान अर्जित किया जा सकता है। कला, साहित्य व संगीत का ज्ञान इस श्रेणी में आता है। तर्क विधि के द्वारा यथार्थ ज्ञान को संदेहरहित बनाकर सत्यापित किया जाता है।

दोनों पद्धतियों की तुलना करने पर हमें ज्ञात होता है कि शिक्षण पद्धतियों के रूप में प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द विधि दोनों चिन्तकों द्वारा मान्य है। ज्ञान को श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन जैसी विधियों से ही प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार रामानुज की शिक्षण पद्धतियाँ शंकर की पद्धतियों की ही छाया है। इस प्रकार दोनों शिक्षण पद्धति के समन्वय के रूप में श्रवण, मनन व निदिध्यासन को महत्वपूर्ण माना जा सकात है। इन तीनों विधियों की आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भी उपादेयता निश्चित करके छात्रों को सम्यक ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

शिक्षक संकल्पनाः–

आचार्य शंकर ने शिक्षक के रूप में एक महान व्यक्तित्व की कल्पना की है। शिक्षक नैतिक गुणों से सम्पन्न व चरित्रवान होना चाहिए। उसे सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान का ज्ञाता न होकर, ब्रह्म तत्व का भी ज्ञाता होना चाहिए। उसके भीतर अहंकार शून्यता तथा परोपकारशीलता का यथेष्ट गुण विद्यमान होना चाहिए। नैतिक गुणों के साथ–साथ शिक्षक में शैक्षिक योग्यता, अध्यापन कुशलता तथा अध्ययन प्रियता का गुण भी समाहित होना चाहिए।

शंकर के अनुसार गुरू छात्र (शिष्य) के अज्ञान का आवरण हटाकर उसे ज्ञान की प्राप्ति कराता है। ज्ञान प्राप्त कर शिष्य अपने जीवन के परमलक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। शिक्षक छात्र का आध्यात्मिक पिता होता है। इस प्रकार समस्त शिक्षक प्रक्रिया में शिक्षक के दो महत्वपूर्ण कार्य माने जा सकते हैंः–

1. शिक्षार्थी को व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार करना।
2. शिक्षार्थी को आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति कराना अर्थात् शिक्षार्थी को 'ब्रह्म ज्ञान' से परिचित कराना।

रामानुज के अनुसार शिक्षक को बालक को ईश्वर का रूप मानना चाहए तथा उसके व्यक्तित्व का समादर करना चाहिए। शिक्षक स्थिर बुद्धि अथवा प्रज्ञा वाला होना चाहिए। शिक्षक के मुख्य गुण दृढ़ निश्चयी होना, निष्पाप, वेदों का ज्ञाता, नैतिक विचारों से युक्त, सात्विक, रागद्वेष रहित, जितेन्द्रिय एवं निश्चित दिनचर्या युक्त आदि है। शिक्षक को छात्रों के आत्मिक उत्थान में सहायक होना चाहिए। शिक्षक छात्रों को लौकिक एवं परमार्थिक ज्ञान प्रदान करके आत्मोत्सर्ग में सहायक होना चाहिए।

उपरोक्त तथ्यों के अवलोकन से यह सिद्ध होता है कि शंकर व रामानुज दोनों ही शिक्षक को समस्त सद्गुणों से युक्त एक महामानव के रूप में संकल्पित करते हैं जिसमें विषय ज्ञान के साथ–साथ आत्मबोध भी विद्यमान हो। उसे छात्रों का हितैषी तथा पथ–प्रदर्शक सिद्ध करते है। उसे छात्र को 'ब्रह्म' का ज्ञान कराकर 'ब्रह्म' प्राप्ति में सहायक मानते हैं।

छात्र–संकल्पनाः–

शंकराचार्य के अनुसार प्रत्येक छात्र असीमित ज्ञान व शक्ति का भण्डार होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से सब छात्र समान हैं, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उनमें भिन्नता पायी जाती है। भिन्नता के कई स्वरूप हो सकते हैं– शारीरिक भिन्नता, मानसिक व बौद्धिक भिन्नता आदि। अलौकिक रूप से यह भिन्नता उनके कर्मों के आधार पर होती है।

रामानुज के अनुसार बालक ईश्वर का शाश्वत अवतार है। इसलिए उसके व्यक्तित्व का समादर करना अनिवार्य है। ईश्वर का अंश होने के कारण प्रत्येक जाति, वर्ण व धर्म के बालक समान होते हैं। छात्रों में निम्न गुणों का होना आवश्यक माना गया है– यथा–आस्तिक होना, धर्मनिष्ठ होना, शील–गुण सम्पन्न, आचार्य की आज्ञा पालन में तत्पर, आचार्य सेवा में निपुण, ज्ञान प्राप्ति के लिए सक्रिय एवं अध्ययन में तल्लीन आदि गुण समाहित हैं। इस प्रकार रामानुज की शिक्षा छात्र–अभिकेन्द्रित ही मानी जा सकती है।

अनुशासन संकल्पनाः–

अद्वैत वेदान्त दर्शन में अनुशासित जीवन को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। मन एवं इन्द्रियों के संयम को आवश्यक मानकर छात्रों के लिए साधन चतुष्टय यथा विवेक, वैराग्य, संयम तथा मोक्ष को अनिर्वाय किया गया है। संयमी छात्र ही अनुशासित हैं और फिर अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। बालक को अनुशासित बनाने के लिए प्रकृति के समीप लाना चाहिए। एक मनोवैज्ञानिक की तरह शंकर ने बाल प्रकृति की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। 1. क्षिप्तावस्था या शिप्त 2. विक्षिप्ता–वस्था या विशिप्त 3. मुधावस्था 4. एकाग्रता।

क्षिप्ता वस्था में बालक पूर्णतः इन्द्रियों के अधीन रहता है। विक्षिप्तावस्था में वह अपनी इन्द्रियों पर आंशिक रूप से नियन्त्रण करने में सफल हो पाता है। मुधावस्था में बालक अपनी इन्द्रियों पर काफी नियन्त्रण कर लेता है, परन्तु आलस्यवश पूर्ण रूप से ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता।

एकाग्रता की अवस्था में बालक की इन्द्रियों पर आत्मा का नियन्त्रण होता है। वास्तव में अनुशासन का अर्थ एकाग्रता ही है।

शंकर के अनुसार अनुशासन, आत्मानुशासन ही हो सकता है। योगाभ्यास के द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण सम्भव है।

रामानुजाचार्य भी बालक के आत्मानुशासन के पक्षधर हैं। उनके अनुसार बालक पर अनुशासन बलात नहीं थोपा जाना चाहिए। अनुशासन स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किये गये नियम हैं। बालक को अनुशासित रखने के लिए शिक्षकों को चाहिए कि वह बालक का उचित मार्गदर्शन करे। बालक का ज्ञान स्वत स्फूर्त होना चाहिए। उन्हें श्रोत स्मार्त वाक्य समर्थित वस्तुओं को धारण करना चाहिए। योगाभ्यास द्वारा आत्मनियंत्रण संभव है। स्वतन्त्रता एवं संयम के मध्य उचित समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

शंकर एवं रामानुज द्वारा प्रस्तुत अनुशासन व्यवस्था को आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी उपयोगी बनाया जा सकता है।

विद्यालय संकल्पनाः–

आचार्य शंकर एवं आचार्य रामानुज दोनों के अनुसार गुरूकुल शिक्षा प्रणाली ही उपयुक्त प्रणाली मानी गयी है। छात्र–गुरूकुल में गुरू के सम्मुख बैठकर ही शिक्षा ग्रहण कर सकता है। इसलिए विद्यालयों अथवा गुरूकुलों को नगरीय कोलाहल से दूर प्रकति के सुरग्य वातावरण में स्थापित किया जाना चाहिए। इससे बालक को आत्मिक शान्ति भी प्राप्त हो सकती है। शान्त वातावरण में ही ब्रह्म आराधना संभव है।

यद्यपि वर्तमान परिवेश में विद्यालय के रूप में गुरूकुल प्रणाली की तरफ लौट पाना संभव नहीं दिखायी दे रहा है, तथापि गुरूकुल प्रणाली के ऐसे अनेक तत्व हैं जो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अंगीकृत किये जा सकते हैं। गुरू तथा शिष्य के मध्य स्थापित आत्मिक सम्बन्धों के द्वारा आज शिक्षक और शिक्षार्थी के पारस्परिक सम्बन्धें को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। छात्रों का नैतिक व चारित्रिक विकास किया जा सकता है। गुरू ही छात्र का आदर्श है। इसलिए शिक्षक को चाहिए कि वह अपने कार्यों द्वारा एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करे।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के गूढ़ एवं विस्तृत दार्शनिक चिन्तन का अन्तिम सार ही वेदान्त दर्शन है। शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त एवं रामानुज का विशिष्टाद्वैत वेदान्त

चिन्तन धारा का चरमोत्कर्ष है, जिसमें ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, ज्ञान व इसके श्रोत, ज्ञान की प्रक्रिया तथा शिक्षा व्यवस्था का सम्यक दिग्दर्शन किया जा सकता है। वेदान्त दर्शन को उत्तर मीमांसा कहते हैं। मीमांसा का विषय ब्रह्म ज्ञान है। एक ओर जहाँ पूर्वमीमांसा में 'धर्म जिज्ञासा' है तो वहीं दूसरी ओर उत्तर मीमांसा (वेदान्त) में 'ब्रह्म जिज्ञासा' है। दोनों का लक्ष्य एक ही 'ब्रह्म' की प्राप्ति है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. राधाकृष्णनः भारतीय दर्शन भाग – 1
2. डॉ. केदारनाथ सिंह : भारतीय दर्शन
3. डॉ. राजीव मालवीय : वेदान्त दर्शन और शिक्षा
4. डॉ. शोभा निगम : भारतीय दर्शन
5. डा.एल.के. ओड : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
6. डॉ. रमन बिहारी लाल : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार
7. डॉ. राम सकल पाण्डेय : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार
8. गोस्वामी तुलसीदास : रामचरित मानस
9. सदानन्द योगी : वेदान्तसार : (विद्वन्मनोरंजनी)
10. वाचस्पति मिश्र : योगय भाष्य : तत्व वैशारदी व्याख्या